भारतीय सिनेमा की एक प्रयोगशाला... राम गोपाल वर्मा

विवेक कुमार गुप्ता, Ph.D. Researcher, IGNOU, New Delhi

1995 में हिंदी फ़िल्म इंडस्ट्री में एक नया नाम एकाएक ही बहुत बड़ा हो गया, यह नाम था राम गोपाल वर्मा और वजह थी फ़िल्म रंगीला। इस फ़िल्म से पहली बार पूरी हिंदी फ़िल्म इंडस्ट्री ने ना सिर्फ राम गोपाल वर्मा की सराहना की बल्कि इनके रचनात्मक प्रतिभा का स्वागत भी किया। इसके बाद उन्होनें बॉलीवुड को ना सिर्फ बेहतरीन फिल्में दीं बल्कि इस इंडस्ट्री को फ़िल्म बनाने का एक नया नज़रिया भी दिया। आज ये काफी सफल-असफल फिल्में देने के बाद एक बार फिर से बॉलीवुड में कमबैक करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। कुछ फ़िल्म समीक्षक बड़े ही हल्के शब्दों में उनकी कुछ असफल फिल्मों की दुहाई देकर मज़ाक उड़ा देते हैं। ऐसे लोगों के लिए मुझे एक एक याद आ रही है... '*असफल होने से बचने का सबसे आसान तरीका है कि कभी प्रयास ही मत करो।*' राम गोपाल वर्मा से पहले तक अधिकतर फ़िल्म निर्देशक यही करते भी थे। एक बने हुए फार्मूले को आधार बनाकर भारतीय दर्शकों को एक ऐसी दुनिया में ले जाते थे जिसका एक आम दर्शक से दूर-दूर तक कोई सरोकार ही नहीं होता था। राम गोपाल वर्मा ने भारतीय सिनेमा में सबसे अधिक प्रयोग करते हुए फ़िल्म निर्माण की अपनी एक खुद की शैली का निर्माण किया।

राम गोपाल वर्मा कौन है?

आज बॉलीवुड में अपनी खास पहचान बनाने वाले राम गोपाल वर्मा (रामू) का जन्म 7 अप्रैल 1962 को हैदराबाद में कृशनम राजू और सूर्यम्मा के यहां हुआ। स्कूल में रामू एक औसत दर्जे से भी नीचे के छात्र रहे, पढ़ाई में उनका मन कभी लगा ही नहीं और वो हमेशा ही स्कूल छोड़कर भाग जाया करते थे। उनकी इस आदत से उनके घर वाले उनके भविष्य को लेकर काफी परेशान रहने लगे, खासकर इनके पिता जी। बचपन से ही रामू का फिल्मों के प्रति काफी आकर्षण था। एक ओर इनके पिताजी की चाहत थी उनका बेटा पढ़ लिखकर इंजिनयर बने तो वहीं दूसरी ओर रामू थे जिनका मन पढ़ाई-लिखाई में कभी लगा ही नहीं। घर वालों के दबाव में आकर रामू ने विजयवाड़ा के एक इंजीनियरिंग कॉलेज में प्रवेश तो ले लिया लेकिन उनका दिल और दिमाग अगर किसी चीज़ को समझ पाता था तो वो सिर्फ सिनेमा ही था। सीविल इंजीनियरिंग की पढ़ाई करने वाले रामू का जीवन काफी उदासीन हो गया था। कॉलेज की पढ़ाई के दौरान वो प्राय: क्लास छोड़कर फ़िल्म देखने भाग जाया करते थे। उस समय वो सिनेमा हॉल जाकर सप्ताह में लगभग 8-10 फिल्में देखा करते थे। फिल्मों के प्रति उनके जुनून का आलम यह था कि वो सिर्फ किसी दृश्य विशेष तक को देखने के लिए सिनेमा हॉल में एक ही फ़िल्म को बार-बार देखने चले जाते।

वह समय भी आ गया जब रामू की पढ़ाई पूरी हो गई। इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद वो दिशाहीन हो गए थे। रामू को बिलकुल ही समझ में नहीं आ रहा था कि अब करना क्या है, एक तरह

से ये किसी बेकार सामान की तरह हो गए थे। इस बारे में राम गोपाल वर्मा कहते हैं...

"मैं अपने माता-पिता की नज़रों में एक बेकार सामान की तरह हो गया था, जो एक तरह से सच भी था। मेरे जीवन में कोई उद्देश्य ही नहीं था। मैं कुछ खास तरह के लोगों को देखकर मोहित हो जाया करता था, इसलिए मैंने उनकी आदतों को पढ़ना शुरू कर दिया। मैं सबसे अधिक अपने ही क्लास के कुछ बदमाश लड़कों की आदतों से प्रभावित हुआ करता था। वे मेरे लिए किसी गैंगेस्टर-बदमाश की तरह दिखते थे। उनके पास इतनी क्षमता थी कि वे किसी के भी सामने बिना किसी से डरे कहीं भी आ-जा सकते थे, बिना किसी डर के वे जो चाहे कर सकते थे, लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सकता था, शायद मेरे अंदर कुछ करने की इच्छा ही नहीं थी। लेकिन मुझे ऐसा लगता है (हँसते हुए) – कि मुझे उनकी ही तरह एक दोस्त की जरूरत है। वे मेरे लिए किसी हीरो की तरह थे। उस समय ऐसे लड़कों का साथ मेरे लिए पहला कोई समाज विरोधी कार्य था। एक लंबे समयावधि के बाद, ऐसे लोग जिनका जीवन समान्य लोगों के जीवन से कहीं अलग था से मेरा मोह अब कम होने लगा था। मैं हमेशा अकेलापन महसूस करता था- इसलिए नहीं कि मैं खुश नहीं था, बल्कि इसलिए कि मैं खुद से ही अलग रहता था, न की दूसरों से। इसलिए मैंने खुद को ही पढ़ना शुरू किया-मेरे बात करने का तरीका, मेरा रहन-सहन, मेरी आदत। इस तरह से मैंने अपने आप को पढ़ना शुरू कर दिया। मेरी इस आदत की वजह से मैंने दूसरों को भी पढ़ना शुरू कर दिया। मेरी अपने आप को और दूसरों को लगातार पढ़ने का जुनून ही शायद पहली प्रेरणा थी की मैं फ़िल्म मेकर बनूँ और फिल्में बनाऊँ"।

राम गोपाल वर्मा का फिल्मों के लिए संघर्ष

रामू अब एक सीविल इंजीनियर बन चुके थे लेकिन अपना भविष्य फ़िल्मों में तलाश रहे थे। यह बड़ी ही दिलचस्प बात है कि रामू ने सिनेमा की कभी कोई पढ़ाई भी नहीं की और सपने देख रहे थे फ़िल्म बनाने के। पढ़ाई के लिए कभी समय ना देने वाले रामू ने फिल्मों के लिए दिन-रात एक कर दिये। उनका समाज और समाज में हो रहे घटनाओं को देखने का अपना एक अलग ही नज़रिया था। वो समाज के उस पहलू को देखते थे जिसकी ओर बाकी लोग ध्यान भी नहीं देते। उन्होनें अपने आस-पास की होने वाली घटनाओं को अपने नज़रिये से कहानी के रूप में लिखना शुरू किया और फिर उन्हें पटकथा का रूप देने लगे। ऐसी ढेरों कहानी व पटकथा लिखने के बाद उन्होनें फ़िल्म निर्माता-निर्देशकों से मिलना शुरू किया। रामू बार-बार एक नई कहानी-पटकथा लेकर निर्माता-निर्देशकों से मिलते और हर बार उनकी कहानी सुनकर उन्हें मना कर दिया जाता। बार-बार नाकारे जाने के बाद अंततः रामू को अपना निर्णय बदलना पड़ा।

रामू को एक ऐसा व्यवसाय करना था जिसमें उनका मन लग सके इसलिए उन्होनें हैदराबाद में ही एक विडियो लाइब्रेरी खोल लिया। ऐसा नहीं है कि इस असफलता के बाद रामू ने फ़िल्मों में जाने का अपना निर्णय छोड़ दिया था। वीडियो लाइब्रेरी में तो वो अब फिल्में देखकर फ़िल्म बनाने की छोटी-छोटी बारीकियों का अध्ययन करने लगे। रामू ने एक बार फिर से कहानियाँ लिखना शुरू किया और एक बार फिर से निर्माता-निर्देशकों से मिलना शुरू किया।

इस बार रामू को एक तेलगु फ़िल्म में मौका मिला, लेकिन किसी दूसरे की फ़िल्म में बतौर सहायक निर्देशक। रामू किसी तरह फ़िल्म इंडस्ट्री में आ तो गए लेकिन वो संतुष्ट नहीं थे। इसी दौरान एक बार रामू की बात तेलगु फ़िल्म के सुपरस्टार नागार्जुन से हुई और नागार्जुन ने उन्हें अपने स्टुडियो में लगे सेट पर ही मिलने के लिए बुला लिया।

वहाँ रामू ने अपने कहानी का एक दृश्य नागार्जुन को सुनाया जिसे सुनकर नागार्जुन इतने अधिक प्रभावित हुए की उन्होनें ना सिर्फ इस फ़िल्म को बनाने के लिए निर्णय किया बल्कि उस फ़िल्म में काम भी करने के लिए हाँ कर दिया। नागार्जुन ने इस एकदम नए निर्देशक को ही निर्देशन की ज़िम्मेदारी सौंपी। रामू ने इस फ़िल्म को तेलगु में 1989 में शिवा नाम से बनाया और यह फ़िल्म सुपर हिट रही। इस तरह एक लंबे संघर्ष के बाद राम गोपाल वर्मा अपनी मंज़िल पर आ गए जहां से उन्हें एक नई यात्रा की शुरुआत

करनी थी।

बॉलीवुड में राम गोपाल वर्मा यानी एक नया बॉलीवुड

1990 में एक क्राइम फ़िल्म आई, जिसका नाम था **शिवा**। यह फ़िल्म बॉक्स ऑफिस बहुत अधिक धमाल तो नहीं मचा पाई फिर भी यह फ़िल्म सफल रही। इस फ़िल्म ने सिने विश्लेषकों और इस विधा के साधकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। ऐसा नहीं हैं इस फ़िल्म से पहले इस मुद्दे पर कभी फ़िल्म नहीं बनीं थी। फ़िल्म शिवा से पहले भी इस विषय पर ढेरों फिल्में ना सिर्फ बनीं थीं बल्कि सफल भी रहीं थीं। रामू फ़िल्म शिवा के द्वारा बॉलीवुड में एक नई ताज़गी लेकर आए। इस फ़िल्म में सब कुछ नया था, फ़िल्म का ट्रीटमेंट, नैरेशन या फिर कैमरे का प्रयोग सब कुछ नए जैसा था। यह फ़िल्म आम लोगों को सीधा अपने साथ जोड़ती थी। वास्तव में देखा जाए तो इस फ़िल्म से बॉलीवुड को एक ऐसा निर्देशक मिला था जो अपने आप में एक फ़िल्म का स्कूल था, आने वाले समय में बॉलीवुड प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस निर्देशक से प्रभाव ग्रहण करने वाला था।

ज़रा याद कीजिए 80-90 का दशक जब भारतीय फिल्में मार-धाड़ एक्शन से भरपूर हुआ करती थीं। जब बॉलीवुड का हीरो किसी अवतरित पुरुष की तरह पर्दे पर आता था और उड़-उड़ कर 20-30 गुंडों को धूल चटा देता था। जब गोलियां चलती तो बेहिसाब, जिसे देखकर दर्शक सीटियाँ बजाते थे। अब ज़रा आज-कल की कुछ अच्छी फिल्मों को याद कीजिये। आज अगर पिछले 10-15 सालों के कुछ सफल फिल्मों की लिस्ट बनाई जाए तो उनमें लगभग आधी फिल्मों में आपको आपके अगल-बगल का परिवेश व पात्र दिखेंगे जो वास्तविकता का एहसास करवाता है ।आप ज़रा विशाल भारद्वाज की ओमकारा या अनुराग कश्यप की गैंग्स ऑफ वासेपुर या मसान या दम लगा के हइसा जैसी फिल्मों को देखिये इन सभी फिल्मों को यथार्थवादी शैली में बनाया गया है। इन आज कल के फिल्मों के हीरो के पास सुपरमैन वाली शक्ति नहीं होती लेकिन ये फिल्में अन्य फिल्मों के तुलना में न सिर्फ अधिक प्रभावशाली होती है बल्कि दर्शक भी इन फिल्मों को पसंद करते हैं। आर्थत बॉलीवुड में फ़िल्म बनाने की एक नई परंपरा की शुरुआत हो चुकी है। अब ज़रा याद कीजिये फ़िल्म हिंदी फ़िल्म शिवा को, 1990 में आई इस फ़िल्म ने अपनी सभी पुरानी परम्परों को तोड़ती है। बॅकग्राउंड में एकदम सीमित ध्वनि, फ़िल्म के गुंडे जे. डी., गणेश या चक्रवती हों या फ़िल्म का हीरो शिवा सबका चरित्र हमारे परिवेश में हमारे आस-पास ही दिखता। ना ही इस फ़िल्म का हीरो ही उड़ कर मार पाता है ना गुंडे फिर भी यह फ़िल्म अपनी पुरानी फिल्मों से अधिक प्रभाव छोड़ती है। यहाँ तक कि इनके हाथ में दिखने वाला हथियार भी बेहद समान्य है, जिसे हम अपने परिवेश में आसानी से देखते हैं। अर्थात जिस रियलिस्टिक फिल्मों को हम आज-कल पसंद कर रहे हैं उसकी शुरुआत 1990 में ही रामू ने कर दिया था।

अगर ध्यान से देखा जाए तो आप पाएंगे कि इस परंपरा की शुरुआत करने का श्रेय रामू को ही जाता है। रामू ने हरेक जेनर की फ़िल्म को यथार्थ के करीब पहुंचाया है। रोमांटिक कॉमेडी रंगीला बनाकर रामू ने बहुत पहले ही फ़िल्मी विद्वानों को बता दिया था कि एक निर्देशक चाहे तो अपने आस-पास के परिवेश में भी रोमांस को ढूंढ सकता है। इसके पहले इस तरह की जब भी फिल्में बनी वो किसी अंजान दुनिया की ही लगती थी। इनकी हॉरर फ़िल्म रात, डरना माना है या भूत की बात करें तो ऐसी फिल्मों को भी रामू ने वास्तविकता के करीब ला दिया है। इसके पहले मरी हुई आत्माएं या तो जंगलों में भटकते हुएं गाना गाती थी या फिर डरावनी शक्ले अख्तियार करके हंगामा मचाती थी। फ़िल्म शिवा के बाद सत्या, कंपनी, सरकार, सरकार राज, रक्तचरित्र जैसी बहुत सी फ़िल्मों का निर्देशन रामू ने किया। इसमें कोई दो राय नहीं कि रामू की बहुत सी फिल्में व्यावसायिक रूप से असफल रही लेकिन किसी को यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रयोगशाला में भी किया गया हर प्रयोग सफल नहीं होता, लेकिन जब सफल होता है तो उसे सभी अपनाते हैं। आज जो कुछ फ़िल्म निर्देशक लीक से हटकर अच्छी फिल्में बना रहें हैं उसका रास्ता रामू ने ही दिखाया था। दरअसल प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से आज रामू के परंपरा को ही आगे बढ़ाया जा रहा है।

राम् की 'आग' के बाद दर्शक लगातार उनकी फिल्मों को नकारते जा रहे हैं। आज उनकी फिल्मों में पैसा लगाने वाले निर्माताओं की कमी हो गई है, लेकिन प्रयोगवादी राम् कम बजट में छोटे कैमरे से ही फिल्में बना रहे हैं। यह राम् का फिल्मों के प्रति अटूट आस्था ही है कि राम् एक बार फिर से एकदम नए कलाकारों के साथ एक नई हिंदी फ़िल्म किलिंग विरप्पन बना रहे हैं। उम्मीद है इस बार राम् एक बार फिर से एक नई ताज़गी लेकर आएंगे जो दर्शकों को अभिभूत कर जाए।

संदर्भ:

I. जय प्रकाश चौकसे से बातचीत।

II. www.filmibeat.com/celebs/ram-gopal-varma/biography.html

III. http://www.bhadas4media.com/old/web-cinema/2222-film-alok-nandan.html

IV. राम गोपाल वर्मा की फिल्में।